International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(3): 27-31

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(3): 27-31
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 24-03-2019
Accepted: 26-04-2019

रीता कुमारी
संस्कृत–शोध छात्रा
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
रीता कुमारी
संस्कृत–शोध छात्रा
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

आधुनिक कृष्ण परक काव्यों में दार्शनिक चेतना

रीता कुमारी

प्रस्तावना

20वीं शताब्दी के संस्कृत कवियों ने सहृदय संवेद्य एवं विद्वज्जन श्लाध्य अपने कृष्णपरक संस्कृत काव्यों में वर्ण्य विषय के साथ–साथ दार्षनिक चेतना को प्रस्तुत करने का श्लाधनीय प्रयास किया है। श्रीकृष्णचरित्र को आधार बना कर रचे गये इन काव्यों में भारत देष की प्राणभूत दार्षनिक मान्यतायें ऐसी विषेषतायें हैं, जो भारतीय साहित्य को सर्वोच्च पदवी पर प्रतिष्ठित करती आयी है। सम्पूर्ण विष्व को अनुप्राणित करके सर्वोच्च प्रतिष्ठा को प्राप्त दार्षनिक आदर्षों का अपने काव्यों में प्रस्तुतीकरण करते हुए 20वीं शताब्दी के संस्कृत कवियों ने उन्हें जन–जन तक पहुँचाने का प्रषंसनीय प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आधुनिक कृष्ण परक काव्यों में प्रतिपादित दार्षनिक चेतना के प्रस्तुतीकरण का प्रयास किया गया है।

ब्रह्म : दार्शनिक तत्वों में प्रथम तत्व परब्रह्मपरमेष्वर का 20वीं शताब्दी के संस्कृत कवियों ने अपने काव्यों में किसी न किसी रूप में प्रस्तुतीकरण अवष्य किया है। इन काव्यों में विविध दार्षनिक परम्पराओं में पूजित ब्रह्म के स्वरूपों का प्रतिपादन स्थान–स्थान पर दिखाई देता है। वेदान्त मत को प्रस्तुत करते हुए इन कवियों ने स्पष्ट किया है कि वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। ब्रह्म के अतिरिक्त इस संसार में जो कुछ भी है, वह सर्वथा मिथ्या है। [1] वेदान्तीजन परमतत्व आत्मतत्व का चिन्तन परब्रह्म की उत्तमोत्तम स्तुति का आश्रय लेकर करते हैं। वे एकमात्र ब्रह्म ही सद्रूप से विद्यमान है, ऐसा निष्चय करके कृतकृत्य होते हैं।[2]

मीमांसकों के ब्रह्मसम्बन्धी मत का प्रस्तुतीकरण करते हुए आधुनिक कृष्ण परक काव्यों में कहा गया है कि मीमांसक विद्वान क्रियार्थ्थाश्रुति का मंथन करके परमेष्वर को काम रूप मानकर विधिपूर्वक विविध यज्ञों के द्वारा उनकी अर्चना करते हुए यज्ञेष रूप से प्राप्त करना चाहते हैं।[3]

सांख्य दर्षन में मूल तत्व के रूप में प्रकृति और पुरूष को स्वीकार किया गया है। पुरूष को प्रकृति से संयुक्त मानकर ही सांख्य में सृष्टि का निरूपण किया गया है।4 सांख्य दर्षन में कुल पच्चीस तत्व माने गये हैं।5 इस दर्षन के प्रतिपाद्य पुरूष को सर्वोपरि मानते हुए कहा गया है कि सांख्यमत को मानने वाले लोग जिन इन्द्रियातीत पुरातन पुरूष को प्रकृति समुदाय रूप मानते हैं और अन्त में यत्नपूर्वक प्रकृति पुरूष विवेक के द्वारा प्रकृति निरास करके उसे असंगत पुरूष रूप से भजते हैं।6

नैयायिकों के मत को प्रस्तुत करते हुए वर्तमान कृष्ण परक काव्यों में कहा गया है कि नैयायिक पण्डित अपने अनुभव के अनुसार स्वरूप से परमाणु तत्व को पृथक करके इन्द्रियों के द्वारा प्राणायाम पूर्वक सृष्टि कर्ता रूप परमेष्वर को इन्द्रिय–गम्य मानकर उसकी उपासना किया करते हैं।[7]

वैषेषिक परम्परा में मान्य ईष्वर का वर्णन करते हुए आधुनिक कृष्ण परक काव्यों में कहा गया है कि वैषेषिक मतावलम्बी विद्वान परमात्मा का सविषेष रूप से चिन्तन करके तर्क युक्तियों द्वारा उन्हें पदार्थों में अनुगत मानकर परस्पर वाद–विवाद करते हुए विवादातीत होने पर प्रभु को अपने आगह –ग्रह के अनुसार कम्पित विग्रह वाला जानते–मानते हुए भजते हैं।[8]

बौद्ध मतावलम्बियों के द्वारा माने गये एक मात्र लक्ष्य परम पद का प्रतिपादन करते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने कहा है कि विद्वत्ता को प्राप्त हुए प्रबुद्ध बौद्धजन बौद्धमत का अवलम्बन करके उसी परमपद को पाना चाहते हैं, जो साक्षात् प्रभु का स्वरूप है। नाम, रूप में भेद प्रदर्षक वस्तुतः हरि ही है।[9]

जैन दर्षन में अर्हन् के नाम से परमतत्व का निरूपण किया गया है। इसका प्रतिपादन करते हुए आधुनिक कृष्ण काव्यों में कहा गया है कि जैन शास्त्र का आश्रय लेने वाले जैन अर्हन् नामधारी प्रभु को ही महानुभाव, महान एवं विष्व स्रष्टा मानकर उसके नियम पालन में तत्पर रहते हैं।10

पांचरात्र आगम मतावलम्बी वैष्णव सम्प्रदाय में परमतत्व विष्णु का वर्णन करते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने कहा है कि पांचरात्र आगम का आश्रय लेने वाले वैष्णव जन–जन्म मरण का क्लेष प्रदान करने वाले संसार बंधन को त्यागने की इच्छा से अपने हृदय के भीतर सदा अनन्य भाव से इन शंख, चक्रधारी पुरातन पुरूष का हरि के रूप में स्मरण करते हैं।[11]

श्रीराम के उपासकों के विषय में आधुनिक कृष्ण काव्यों में कहा गया है कि राम के उपासक मुमुक्षु जन संसार की प्रत्येक वस्तु को नष्वर मानकर अविनाषी अक्षर तत्व की शरण लेकर श्रीराम के रूप में सदा उपासना करते हैं।[12]

गणेष एवं सूर्य को भगवान का रूप मानने वाले साधकों के विषय में आधुनिक कृष्ण परक काव्यों में कहा गया है कि कोई साधक परमतत्व के लिए उन सर्वेष्वर के उज्जवल विग्रह से सुषोभित श्री गणेष के रूप में उपासना करते हैं।[13]

षिव स्वरूपा दुर्गा की स्तुति को सर्वस्वभूत मानकर उपासना करने वालों के विषय में आधुनिक कृष्णपरक काव्यों में कहा गया है कि पराषक्ति, जगदीष्वरी, दुर्गा तथा षिव स्वरूपा उमा की परादेवी के उपासक चिन्मय ब्रह्म भाव को प्राप्त करने के लिए उपासना किया करते हैं।[14]

तान्त्रिकों, यान्त्रिकों एवं मान्त्रियों के मतों का प्रतिपादन करते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्ण परक काव्यों में कहा है कि तान्त्रिक तन्त्र का आश्रय लेकर, मान्त्रिक साधक मन्त्र का जप करके तथा यांन्त्रिक जन यन्त्र की अर्चना करके स्वभावतः सुख से उन अभीष्ट दाता परमेष्वर को प्राप्त हो गये।[15]

भैरव स्वरूप को सर्वस्व मानने वाले उपासकों के विषय में आधुनिक संस्कृत कवियों ने स्पष्ट किया है कि कापालिक, साधक भी भैरव तथा भयभावन होते हुए भी भव्य मानकर श्री हरि का भजन करते हैं।[16]

शाक्तोपासकों का वर्णन करते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने कहा है कि शाक्त उपासक परमात्मा को प्राप्त करने के लिए पंचसकार का आश्रय लेकर उस लोक नियामक मृत्यु के निवारण की कामना से अनेक तन्त्रों के महाविधानों के द्वारा नित्य उनकी उपासना किया करते हैं।[17]

वामाचार उपासकों का वर्णन करते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्णपरक काव्यों में कहा है कि वामाचार से उपासना करने वाले लोग सकार भाव से वाममार्ग का आश्रय लेकर जिन्हें वामदेव मानते हैं, वे इसी नाम से जिनका चिन्तन करते हुए उन भूतभावन भगवान का भव्य भाव से भजन करते हैं।[18]

समग्र रूप से हम देखते हैं कि आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्णपरक काव्यों में श्री कृष्णोपासना को सर्वोपरि मानते हुए भी भारतीय संस्कृति में मान्य विविध उपासना पद्धतियों से उपासना करने वाले मुमुक्षु जनों का वर्णन करते हुए परब्रह्म के विविध रूपों का प्रस्तुतीकरण किया है। अनेकता में एकता तथा एकता में अनेकता भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विषेषता रही है। ये उपासनायें पृथक्–पृथक् भले ही हैं, लेकिन वस्तुतः वह परमतत्व पर ब्रह्मपरमेष्वर ही सर्वस्वभूत है।

अवतारी कृष्ण : आधुनिक कृष्णपरक काव्यों में श्रीकृष्ण को प्रमुखतम अवतार कहा गया है। आधुनिक संस्कृत कवियों ने कहा है कि साधु–सन्तों की रक्षा, वेदों तथा देवों का संरक्षण तथा अपनी दिव्य लीला की अवतारणा के लिए अविनाषी पूर्णकाम परमात्मा ही इस भूतल पर अवतरित हुए हैं।[19] ब्रह्माजी स्वयं श्रीकृष्ण के अवतार के विषय में बतलाते हैं कि त्रिभुवन भगवान श्री हरि निर्मल, परिपूर्ण एवं सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्ण अवतार ग्रहण करके नाना प्रकार की क्रीडायें करेगें। बाल्यावस्था में महावन और वृन्दावन में जाकर, तरूण एवं किषोर अवस्था में मथुरा एवं द्वारका में पहुँचकर वहाँ रहते हुए भी वे पृथ्वी के पालकस्वरूप असुर भावापन्न दुष्ट मनुष्यों का संहार करेंगे।[20] ब्रह्माजी के इस अवतार के विषय में बतलाने का कारण पृथ्वी का अपने ऊपर भार था, जिसके आ जाने पर पृथ्वी ने पीड़ित होकर अपनी वेदना ब्रह्माजी को बतायी थी।[21]

श्रीकृष्ण के पूर्णावतार के विषय में आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्णपरक काव्यों में कहा है कि युग–युग में भगवान के जो–जो सुप्रसिद्ध अवतार हुए हैं, उनमें देवताओं की अर्थ सिद्धि करने वाला जो श्रीकृष्णवतार है, वह निष्चय ही पूर्णावतार है। वही श्रुतियों और साधु पुरूषों को शान्ति देने वाला है। जिनमें अनल्प और अल्प के भेद से भूषित समस्त ऐष्वर्य एवं सद्वस्तु विद्यमान है। वैभवभूत भगवान भव्य रूप ग्रहण करके भक्तों के कल्याण की प्राप्ति कराने के लिए भव्य रूप में प्रकट हुए। जब महामोहमय तमोगुण बढ़ जाता है तथा वह रजस और सत्व को दबा देता है, तभी वे अविनाषी एवं कृपालु परमेष्वर श्रुतियों के लिए अवतरित होते हैं।[22]

श्रीकृष्ण परमब्रह्म परमेष्वर के पूर्णावतार होकर विधाता के साकार रूप हैं। सिद्धि, तपस्या तथा ज्ञान से परिपूर्ण सृष्टि पर्यन्त उन्हीं की दृष्टि है।[23] साकार होकर के भी वे परब्रह्म परमेष्वर हैं। शुद्धान्तात्मा वाले पुरूष एवं शंकर श्रीकृष्ण की सदैव उपासना करते हैं। विधाता भी श्रीकृष्ण का एक अंष हैं। व्रजराज पुत्र होकर के भी विभंगी छवि से सुषोभित हैं।[24] पितामह ब्रह्माजी श्रीकृष्ण के चरणों की वन्दना करते हैं।[25] वही सबके उत्पादक तथा रक्षा में दक्ष होकर पितृत्व पद को प्राप्त हैं।26 वही सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर्ता हैं।[27]

श्रीकृष्ण के सर्वेष्वर रूप को आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्ण काव्यों में अनेकषः बतलाया है। नारदजी श्रीकृष्ण को सर्वेष्वर मानकर उनकी महिमा को बतलाते हुए कहते हैं कि आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों से रहित सर्वथा स्वतन्त्र है। अतः आपका सर्वोत्तम प्रभुत्व लौकिक व्यवहारों में भी छिप नहीं सकता। आपने मछली बनकर वेदों का उद्धार किया। कछुआ होकर पृथ्वी को पीठ पर धारण किया। सूकर होकर पृथ्वी को फैलाया। सिंह बनकर हिरण्यकष्यप जैसे अजेय दैत्य को मारा और कपट वामन बनकर त्रिलोक को दो ही पग में नाप लिया।28 तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर क्षत्रिय राजमण्डल को इक्कीस वार उजाड़ डाला और फिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर परषुराम को पराजित करके ब्राह्मण कुलोत्पन्न रावण का समूल नाष कर डाला।29 इन वर्णनों से स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण ही सर्वेष्वर ब्रह्म तत्व हैं। विद्वान लोग ब्रह्म तत्व को सर्वेष्वर कहते हैं। वे कृष्ण रूप में व्रजभूमि में प्रकट हुए।30 वस्तुतः परब्रह्म परमेष्वर चैत्य पुरूष हैं।[31]

आधुनिक संस्कृत कवियों ने श्रीकृष्ण को सगुण एवं निर्गुण उभयात्मक मानकर सर्वेष्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया है। तभी तो डा0 रमेष चन्द्र शुक्ल ने कहा है कि सम्पूर्ण लोक जिन में विस्तार के सहित समा जाते हैं, जिनमें सदैव शाष्वती लीलायें हुआ करती हैं, जो सम्पूर्ण विष्व की पिता के समान रक्षा करते हैं, ऐसे सगुण और निर्गुण श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ।[32] स्वयं वसुदेव श्रीकृष्ण की स्तुति में कहते हैं कि आप निर्गुण होकर भी सगुण हो गये।

परब्रह्म परमेष्वर श्रीकृष्ण के प्रति विषिष्ट भक्ति भावना से मण्डित होकर उद्गारों को प्रकट करते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने कहा है कि श्रीकृष्ण तुम मुझ दीन पर कृपा क्यों नहीं करते हो। यदि तुम्हारी दया है तो मुझे पास क्यों नहीं बुलाते हैं। यदि मैं पापी हूँ तो मुझे विमल क्यों नहीं करते हैं।[33] मैं आपकी दयालुता को तब तक नहीं गिनता, जब तक मुझ दीन पर दया नहीं करोगे।[34] तुम्हारे विषय में विख्यात है कि प्रेम से बुलाये जाने पर तुम भक्त के पास पहुँच जाते हो। फिर मेरे लिए कान क्यों बन्द कर लिये। आप से मैं प्रार्थना कर रहा हूँ।[35] आप मेरी प्रार्थना क्यों नहीं सुनते हो। मेरे लिए दर्षन रूपी भिक्षा का दान दे दीजिए क्योंकि सज्जनों के घर से भिक्षुक कभी विमुख होकर नहीं जाता है।[36]

शुद्ध परब्रह्म परमेष्वरय : शुद्ध परब्रह्म परमेष्वर का आधुनिक संस्कृत कृष्णपरक काव्यों में वर्णन करते हुए कहा गया है कि शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में नाम मात्र का विरोध है।[37] सच्चिदानन्द, अद्वैत, शुद्ध परब्रह्म परमेष्वर बहुरूपिणी अपनी माया का ग्रहण करके

परमतत्व स्वरूप होते हुए भी षिव, विष्णु आदि रूपों में दिखायी देता है।38 उसका वास्तविक स्वरूप अद्वैत है तथा वह अविनाषी, एक रूप, सत्, सनातन, अनन्त और अपौरूष है।[39] वह वास्तव में शब्दात्मक प्रणव रूप है।[40] वह अदृष्ट अर्थात् प्रारम्भ से परे हैं तथा संसार के नाम और रूप से सर्वथा भिन्न है। वह महान से भी महान तथा उसे यथार्थ रूप में कोई नहीं जानता है। जो तत्वतः उसे जान लेता है वह वही हो जाता है।[41] विद्वान लोग उसे सर्वेष्वर कहते हैं।[42] वह निर्लेप तथा इच्छा–द्वेषादि से सर्वथा रहित है।[43] यह जगत् और सम्पूर्ण जीव उसी ब्रह्म की लीला के साधन है।[44] ब्रह्म की पलकों के उलट फेर से संसार और उसके नियम बदलते और मिटते रहते हैं। उसका एक पलक का समय प्रलय पर्यन्त होता है।[45] वह ब्रह्म सर्वव्यापी रूप से इस चराचर जगत में स्वतः प्रकाषमान है। ब्रह्म चैतन्यात्मक शक्ति से तथा आत्मानुभवात्मक गम्य रूप से ब्रह्माजी से लेकर कीट पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित है।[46]

ब्रह्म और जगत की एकरूपता का प्रतिपादन करते हुए आधुनिक कृष्ण परक काव्यों में कहा गया है कि वह विष्व रूप ब्रह्म पूर्ण है तथा यह दृष्य प्रपंच भी पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म में पूर्ण ही शेष रहता है।[47] वह परब्रह्म परमेष्वर आत्मा में स्वतः विभाव्यमान, अव्ययात्मा, अतर्क्य, और परमपद है।[48] वह ब्रह्म निर्गुण रूप से सर्वत्र व्याप्त है तथा सम्पूर्ण प्राणियों में नित्य स्थित रहता है। आत्मा रूप से उसे सर्वत्र व्याप्त मानना चाहिये।[49] वह अहित रूप, स्वप्न तुल्य, ज्ञान शून्य, भयदायक और दुःख यात्रा से भरा हुआ संसार उसी नित्य ज्ञानमय सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म के माया भाव से प्रकट होकर मिथ्या होने पर भी सत्य सा भासता है। वस्तुतः वह ब्रह्म अवर्णनीय और अव्यय है। ब्रह्म सत्य, नित्य, स्वयं प्रकाष्य, अनन्त, आदि पुरूष, निर्मल, उपाधि रहित, सबका आदि कारण द्वैतभाव को विनष्ट करके अद्वैत भाव से स्थिति अमृत स्वरूप तथा परिपूर्ण होकर नाम और रूपों में पृथक् है।[50] यह विष्व विविध रूपों में परिणत होता है और फिर उसी में लीन हो जाता है। वही सबका ज्ञाता एक मात्र सार और अविनाषी है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्ण परक काव्यों में ब्रह्म के नाम, रूप, और गुणों का समग्र प्रतिपादन किया है। दार्षनिक ग्रन्थ न होते हुए भी इन काव्यों में ब्रह्म के विविध अवतारों, विविध रूपों, कृष्ण के सर्वेष्वर स्वरूप तथा शुद्ध ब्रह्म का सर्वथा अनूठा चित्रण देखने को मिलता है।

जीव विवेचन : आधुनिक काल के संस्कृत कवियों ने अपने कृष्ण परक काव्यों में अपने पूर्ववर्ती वेदों, उपनिषदों, महाभारत तथा एवं श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर स्थान–स्थान पर जीव विषयक विविध वर्णन प्रस्तुत किये हैं। आधुनिक संस्कृत कवियों के अनुसार जो खाये हुए अन्न को पचाने वाला है, वह वैष्वनार यद्यपि यहाँ दिखायी नहीं देता है, लेकिन उसके द्वारा भोजन पचाया जाता है। वह कौन हो सकता है? वस्तुतः हम तो कहते हैं कि वही आत्म तत्व है।[51]

जीव के माया बन्धन के विषय में आधुनिक कृष्ण परक काव्यों में कहा गया है कि माया के बन्धन से जीव मोह में फँसा रहता है। माया उसके मन को मथकर इन्द्रियों का पोषण करती है। जीवात्मा का अभ्युदय माया की प्रेरणा से अहंकार और ममता आदि भावों से युक्त होकर रूक जाता है और वह सदा ही माया के इषारे पर नाचता है।[52] जीव संसार में जो कुछ भी करता है या कराता है, उस कर्म के कारण ही प्रकृति के गुणों, सत्व, रजस् और तमस् रूप से सर्वथा प्रसूत बुद्धि विकारमय, निजी भाव होते हैं।[53] वे उसी के अनुसार प्राप्त परिणाम में चित्त को विकसित करते हैं।[54] माया के वषीभूत होकर भी जीव संसार में भ्रमण किया करता है।[55] वह माया ही है, जो तीनों गुणों के द्वारा जीव को मोह में डुबोती है, उसके मन को मथ डालती है तथा इन्द्रियों का पोषण करती है। उसी माया को प्रेरणा से अहंकार और ममता आदि अषुभ भावों से युक्त जीवात्माओं का अभ्युदय रूक जाता है और संसारी जीव माया के इषारे पर नाचने लगता है।[56]

जीव की नित्यता और अमरता को आधुनिक कृष्ण काव्यों में अनेकषः बतलाते हुए कहा गया है कि आत्म तत्व अमर है। इसका कभी भी विनाष नहीं होता है। केवल जीव का सांसारिक शरीर ही नष्वर है।[57] यह आत्म तत्व न तो काटा जा सकता है, न सुखाया जा सकता है और न ही जलाया जा सकता है। वस्तुतः इस सनातन आत्मा को कभी भी भिगोया भी नहीं जा सकता है।58 आत्मा की जाति, आकृति और क्रिया तथा क्रियागुण उपाधि मात्र होते हैं।[59] जीव नित्य होकर सदैव परमात्म तत्व से जुड़ा हुआ है। वह महान है तथा एक है और अनेक भी है।[60] वह अनन्त ब्रह्म का अंषभूत है। अद्वितीय परमेष्वर ही अपने अनेक रूप वाले अंष जीव समुदाय के साथ क्रीडा किया करता है। वह अविनाषी ब्रह्म ही जीवात्माओं की गति है।61 जीव का संसार में ''मैं मरूंगा'' यह निष्चय मिथ्या है। यह तो केवल भवबन्धन मात्र है। आत्मा न कभी मरता है और न ही कभी जन्म लेता है।[62] वह चैतन्यांष से परिपूर्ण विषुद्ध रूप है, जिसको उसे जानने वाले ज्ञानी पुरूष अदृष्ट तत्व कहते हैं। जो लोग ऐसा जानकर उसमें निष्ठा रखते हैं, वे दृष्य प्रपंच से ऊपर उठकर आत्मा की अदुष्ट स्वरूपा गति को प्राप्त कर लेते हैं।[63]

जीवात्मा के स्वयं के हित एवं अहित पर विचार करते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्णपरक काव्यों में स्पष्ट किया है कि यह जीवात्मा स्वयं अपने लिए हितप्रद भी होता है और अहित प्रद भी होता है। यदि कोई इसे ठुकराकर स्वर्ग षिखर पर आरूढ़ हो जाये अथवा उससे भी ऊँचे स्थान पर पहुँच जाये तो, इसका वह उन्नयन निरर्थक ही हो जाता है, क्योंकि स्वर्गादि उसके मृत्युभय को दूर नहीं कर सकते हैं।[64]

जीव के स्थूल सांसारिक शरीर को बतलाते हुए आधुनिक संस्कृत कृष्ण परक काव्यों में इस स्थूल विद्यमान शरीर को अज्ञान का कारण माना गया है।[65] शब्द शक्ति, उसके विषय शब्द, त्वगिन्द्रिय तथा समस्त वस्तुओं के स्पर्षन की सामर्थ्य, चक्षु इन्द्रिय के रूप सम्बन्ध, रसना का रस विषय तथा संकल्प विकल्प व्यापारों से सम्पन्न मन के व्यापार सांसारिक हैं।[66] यह शरीर केवल नामधारी है, विनष्ट होने वाला है तथा एक दिन यह पंच भौतिक शरीर प्राणहीन होकर गिर जायेगा। इसे एक दिन या तो जलकर राख हो जाना है, या कीड़े पड़ जायेगें या किसी जन्तु का भोजन बनकर विष्टा के रूप में परिवर्तित हो जायेगा।[67] इस शरीर को किसका कहा जाये, क्या यह पिता का है, जो बीज का बपन करता है या माता का है जो नौ माह तक गर्भ में धारण करती है या माता की भी माता का है या उन दो व्यक्तियों का है, जो मीठे अन्न रस आदि देकर इसे पुष्ट करते हैं। सत्यता तो यह है कि अव्यक्ता तत्व से उत्पन्न यह शरीर अस्थिर एवं साधारण है। इस शरीर का आश्रय लेकर दुर्जनों के सिवाय दूसरा कौन सुख रहित, आत्म विमुख तथा मृत प्रायः जीवों को व्यर्थ पीड़ा देगा।68 जब तक यह सांसारिक शरीर रहता है, तभी तक इसके साथ ही उत्पन्न हुए उन प्रकृति सम्मिलित एवं स्वतन्त्र से प्रतीत होने वाले तत्वों के द्वारा सब कुछ किया जाता है।[69]

जीव के सांसारिक शरीर परिवर्तन को आधुनिक कृष्ण काव्यों में आधुनिक संस्कृत कवियों ने श्रीमद्भगवद्गीता के समान ही बताया है। आधुनिक संस्कृत कवियों ने कहा है कि जिस प्रकार प्राणी संसार में कौमार्य, यौवन और बुढ़ापे को प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार यह आत्मा एक शरीर के पश्चात् दूसरे शरीर को प्राप्त कर लेता है।[70] जिस प्रकार संसार में एक वस्त्र के पुराने हो जाने पर मनुष्य दूसरा नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा एक शरीर के जीर्ण होने पर दूसरा नवीन शरीर धारण कर लेता है।[71]

सांसारिक जीवों के पारस्परिक मिलन को बतलाते हुए आधुनिक कृष्ण काव्यों में कहा गया है कि इस भूतल के प्राणी बिना प्रयत्न के निरन्तर जैसे मनुष्य के पास आते–जाते रहते हैं, उसी प्रकार

देह के आश्रित जीव भी देहधारियों से स्वतः मिलते और बिछुड़ते रहते हैं।[72]

आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हुए आधुनिक कृष्ण काव्यों में कहा गया है कि यद्यपि आत्मा और परमात्मा दोनों परस्पर भिन्न–भिन्न प्रतीत होते हैं, लेकिन वास्तविक रूप में दोनों अभिन्न तथा सत्य है। आत्मा अगर निर्विकार, नित्य, सच्चिदानन्दमय स्वरूपा है।[73] यह परमात्मा इन्द्रियों के विकारों से पृथक, सत्य संकल्प, साक्षी और दृष्टा है।[74]

समग्र रूप से हम देखते हैं कि आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्ण काव्यों में जीव तत्व का वैषिष्ट्यपूर्ण प्रतिपादन किया है। जीवात्मा की सांसारिक स्थिति के साथ–साथ इन काव्यों में जीव और माया के बन्धन का भी यथार्थ प्रतिपादन किया है। इसके अतिरिक्त जीव और ब्रह्म की एकता, जीवात्मा की नित्यता, जीव के स्थूल सांसारिक शरीर तथा मुक्ति के यत्र–तत्र वर्णन इन कवियों की दार्षनिक प्रतिभा के परिचायक हैं। इन कवियों ने जीव वर्णन आधुनिक भौतिकतावाद को निरर्थक एवं असार सिद्ध करने का प्रयास किया है।

सृष्टि विवेचन : यद्यपि आधुनिक कृष्ण काव्यों में कहीं पर भी सृष्टि का सुस्पष्ट विवेचन नहीं मिलता, लेकिन यत्र–तत्र प्राप्त उल्लेखों के आधार पर कृष्ण काव्यों में सृष्टि का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है।

आधुनिक कृष्ण काव्यों में संस्कृत कवियों ने परब्रह्म से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति मानकर स्पष्ट कहा है कि जैसे मकड़ी मुख से अपने जाले को बुनती है और निगल जाती है, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा भी अपनी इच्छा से जगत् का निर्माण कर, उसी में अवतार धारण करके यहाँ क्रीडा करते हैं।[75] इस सम्पूर्ण जगत् की रचना परब्रह्म परमेष्वर ने अपने खेलने के लिए रंगमंच की तरह अनायास ही की है।[76] यह विष्व रूप पूर्ण ब्रह्म है और दृष्य प्रपंच भी ब्रह्म है। पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण जगत की उत्पत्ति होती है। पूर्ण का पूर्ण होकर भी उस पूर्ण ब्रह्म में पूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है। पूर्ण का पूर्ण होकर भी उस पूर्ण ब्रह्म में पूर्ण ही शेष रहता है।[77] चराचर और अनन्त विष्व ब्रह्माण्ड मनन्त परमात्मा के भीतर प्रकाषमान है तथा उनके परमात्मा तेज से प्रकट होकर यहाँ भी स्पष्ट रूप से प्रकाषित दिखायी देता है।[78] न केवल संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय अपितु देवताओं के भी समस्त कार्यों को वही परिब्रह्म परमेष्वर पूर्ण किया करते हैं।[79] परब्रह्म परमेष्वर अमूर्त्त होकर भी जगत् का सृष्टि कर्ता है तथा संसार में विविध नाम रूप धारण करके अनेकषः प्रतीत होता है।80 श्रीकृष्णचरितामृतम् में यषोदा को कृष्ण के द्वारा मुख में विष्व दर्षन की घटना इस तथ्य का साक्षात् प्रमाण है, क्योंकि बालक कृष्ण के द्वारा मुख खोले जाने पर पांचों तत्व, इन्द्रिय वर्ग, प्रेरक मन, प्राकृत, वैकृत, सूर्य–चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी, आकाष, नक्षत्र मण्डल, ग्रहों की स्थिति पर्वत, नदियां समुद्र, वन तथा सभी बालक उस मुख में साकार विद्यमान दिखायी देते हैं।[81] आधुनिक संस्कृत कृष्ण काव्यों में स्थान–स्थान पर यह सिद्ध किया गया है कि जंगम और स्थावर यह सम्पूर्ण विष्व जगत् उसी परब्रह्म परमेष्वर से उत्पन्न होता है, उसी में ठहरता है और उसी में लीन हो जाता हो जाता है। सत् और असत् जो कुछ भी यह जगत प्रतीत हो रहा है, वह सब उसी परमेष्वर का स्वरूप है।[82]

परब्रह्म परमेष्वर के जगत् कारणत्व में सत्कार्यवाद का प्रतिपादन करते हुए संस्कृत कवियों ने स्पष्ट किया है कि संसार की सभी शक्तियों में असाध्य संसार के अद्भुत विधान, उत्पत्ति, विनाषषील कार्य बिना कारण के नहीं हो सकते। कार्य के कारण का अनुमान होता है, जैसे घडे में कुम्हार का। इसके अनुसार कारणीभूत परब्रह्म परमेष्वर की चेतनात्मक सत्ता की प्रतीति मिटाई नहीं जा सकती।[83] परब्रह्म अपनी शक्ति माया प्रकृति से जगत की रचना करता है, तभी तो कहा गया है कि संसार में आष्चर्य जनक लौकिक व्यवहार रूप नाटक प्रकृति से ही सजा हुआ है, जो परमेष्वर के कृपा निरोध के आश्रित है।[84] यह माया गुण, लिंग, आदि उपाधियों से रहित शुद्ध ज्ञान रूप परम ईष्वर स्वरूपिणी है। वेदान्ती उसे माया कहते हैं, तो मीमांसक उसे क्रिया कहकर सम्बोधन करते हैं। योग दर्षन में उसे सिद्धि कहा जाता है तथा तार्किक बुद्धि इच्छा आदि ईष्वर गुणों में गिनकर गुणात्मक बुद्धि के रूप में देखते हैं। पौराणिक उस माया को परमेष महिषी कहते हैं।[85] यह प्रकृति या माया ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाले आदि कारण की भूमिका, परम पुराण परमेष्वर की इच्छा अनिर्वचनीय सूक्ष्म शक्ति है। यह जगत का संचालन काया धारण करके परब्रह्म के हृदय में निवास करती है।[86] प्रकृति का वास्तविक स्वरूप तीनों गुणों की साम्यावस्था है। परब्रह्म परमेष्वर की प्रेरणा से क्षोम अर्थात् गुण वैषम्य को पाकर संसार की सृष्टि करती है।[87] प्रकृति से सृष्टि प्रक्रिया को बतलाते हुए आधुनिक संस्कृत कवियों ने कहा है कि प्रकृति के तीनों गुणों में क्षोभ ही विष्व सृष्टि है तथा उसका प्रेरक स्वयं ब्रह्म है।88 प्रकृति से विकार रूप में महत्, अहंकार, भूमि, जल, तेज, वायु और आकाष से युक्त विराट जगत उत्पन्न होता है।[89] ब्रह्माजी स्वयं कहते हैं कि मेरे द्वारा रचित जो मूर्त्त जगत् प्रकाषित होता है, इसको अपनी शक्ति या माया से अमूर्त्त रूप परिणत कर देने वाले आप प्रमेय है।90 वैराज संज्ञक विराट की उत्पत्ति परमेष्वर से हुई है, वही उस ब्रह्ममाण्ड कर हितकारी, पूर्णावतार, सकल कल्याणमय गुणों से सम्पन्न और आनन्द का हेतु है। स्थावर और जंगम सम्पूर्ण संसार की वही सृष्टि करने वाला है।[91]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्ण काव्यों में सृष्टि प्रक्रिया का समन्वय परक विषिष्ट चित्रण प्रस्तुत किया है। इन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कृष्ण काव्यों का अनुसरण करते हुए परब्रह्म परमेष्वर को सृष्टि का मूल कारण स्वीकार किया है। वह ब्रह्म ही अपनी शक्ति प्रकृति या माया को आधार बनाकर सृष्टि रचना में संलग्न होता है। प्रकृति या माया से सर्वप्रथम त्रिगुण की विषमता होने पर अहत्त, अहंकार, पंचतन्मात्रायें, पंचमहाभूत तथा इन्द्रियां उत्पन्न होती है। यद्यपि इन काव्यों में सृष्टि प्रक्रिया का क्रमिक विवेचन उपलब्ध नहीं होता है, लेकिन समग्र रूप से इन काव्यों में समन्वय परक स्वरूप ही मान्य है।

मोक्ष का स्वरूप एवं प्राप्ति के साधन : दार्षनिक चेतना संस्कृत साहित्य के प्रत्येक युग में मूलाधार रही है। आधुनिक काल के संस्कृत कवि एवं काव्य भी इस चेतना से अछूते नहीं रहे तथा उन्होंने अपने काव्यों में स्थान–स्थान पर परमपद मोक्ष तथा उसके साधनों पर विस्तृत विचार किया है। मोक्ष के स्वरूप पर यदि विचार किया जाये तो हम देखते हैं कि आधुनिक संस्कृत कवियों ने मोक्ष के स्वरूप का प्रस्तुतीकरण करते हुए कहा है कि जब मनुष्य यह जान लेता है कि यह सम्पूर्ण संसार माया के बन्धन में बंधा हुआ है। परब्रह्म परमेष्वर सर्वस्वभूत मायाधीष है। यह अज्ञान या माया जीव को भ्रमित कर रही है तब माया से निवृत्त हुआ जीव ब्रह्म ही हो जाता है।[92] मोक्ष के स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए आधुनिक संस्कृत काव्यों में कहा गया है –

त्रयाणां च शरीराणां मोचनं मोक्ष उच्यते।
मृत्योः मृत्युः स वै पुसां यद् गत्वा न निवर्तनम्।।[93]

मोक्ष की स्थिति को स्पष्ट करते हुए श्रीकृष्णचरितामृतम् में कहा गया है कि यह चारों ओर नाम रूपात्मक जो विवर्त्त दिखायी दे रहा है, वह सब अद्वैत ब्रह्म ही है अतएव सन्त जन मन से सबको ब्रह्म रूप जानकार आत्म ज्ञान के पथ पर चलते हुए परमेष्वर ज्ञान रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।[94]

मोक्ष के स्वरूप के साथ–साथ उसके साधनों पर भी आधुनिक संस्कृत कवियों ने स्थान–स्थान पर विचार किया है। इनमें ज्ञानकाण्डगत ज्ञान, और कर्मकाण्डगत नाना प्रकार के अपने वर्णाश्रमोचित कर्मयोग, जीवात्मा तथा परमात्मा का विवेक साधन प्रमुख रूप से बताये गये हैं।95 इन साधनों से भी विषिष्ट श्रीकृष्ण का भक्ति साधन है, जो अपनी महिमा से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापों को हरने में समर्थ है।[96] इन प्रमुख

साधनों के साथ–साथ आधुनिक कवियों ने शास्त्रों के ज्ञान को भी मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है। भगवान की प्राप्ति कराने वाली विविध कलायें गुण, तन्त्र और मन्त्रों का भी आधुनिक संस्कृत काव्यों में वर्णन किया गया है।

संक्षेप में यह निष्कर्ष है कि आधुनिक संस्कृत कवियों ने अपने कृष्ण काव्यों के स्वरूप का पूर्ववर्ती मान्यताओं के आधार पर ही प्रस्तुतीकरण किया है। मोक्ष के प्रतिपादक होने के साथ–साथ इन कवियों ने साधनों के भी वर्णन प्रस्तुत किये हैं।

संन्दर्भ

1. श्रीमद्भागवत माहात्म्य, 1/20
2. श्रीमद्भागवत, 8/24/38
3. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 1/9
4. द्वारकाधीष महाकाव्य, 9/54
5. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 1/11/12
6. सांख्यकारिका, 21
7. वही, 22
8. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 1/13
9. वही, 1/14
10. वही, 1/15
11. वही, 1/16
12. वही, 1/17
13. वही, 1/18
14. वही, 1/26, द्वारकाधीष महाकाव्य, 9/51
15. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 1/19
16. वही, 1/20
17. वही, 1/21
18. वही, 1/22
19. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 5/16
20. वही, 5/17/18
21. ब्रजस्तवमालिका, पृ0 45
22. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 8/27, 28
23. पारिजातहरण, 10/55
24. श्रीसंख्यसुधाकर, 122
25. वही, 163
26. पारिजातहरण, 10/54
27. ब्रजस्तवमालिका, द्वारकेषाष्टकम्, 6
28. पारिजातहरण, 5/11
29. वही, 5/12
30. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 20/3
31. वही, 23/35
32. श्रीकृष्णचरितम्, 1/1
33. श्रीसंख्यसुधाकर, 64
34. वही, 65
35. वही, 67
36. वही, 70
37. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 2/296
38. वही, 2/298
39. वही, 2/300
40. वही, 2/335
41. वही, 20/1
42. वही, 20/3
43. पारिजातहरण, 5/19
44. वही, 5/18
45. वही, 5/20
46. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 15/13
47. वही, 53/33
48. वही, 55/34
49. श्रीकृष्णचरितम्, 4/50
50. ऋग्वेद, 1/164/30
51. श्रीमद्भागवत, 4/20/11
52. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 3/21
53. वही, 3/23
54. पारिजातहरण, 10/62
55. वही, 10/63
56. वही, 3/22
57. वही, 3/23, 24
58. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 10/12
59. वही, 10/14
60. पारिजातहरण, 5/7
61. श्रीकृष्णचरितामृतम्,3/22
62. वही, 48/11
63. वही, 6/17
64. वही, 13/31
65. वही, 3/25
66. वही, 30/20
67. वही, 33/20–30
68. वही, 37/4
69. वही, 37/18
70. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 10/13
71. वही, 10/16
72. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 10/20
73. वही, 33/44
74. वही, 33/45
75. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 56/61
76. वही, 53/21
77. वनमालिप्रार्थनाषतक, 16
78. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 53/26
79. वही, 55/30
80. श्रीव्रजस्तवमालिका, पृ0 5, श्रीकृष्णचरितामृतम्, 1/35
81. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 18/6, 7
82. वही, 38/8
83. पारिजातहरण महाकाव्य, 5/7
84. वही, 5/8
85. वही, 6/41
86. वही, 6/43
87. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 33/36
88. वही, 3/28
89. वही, 38/8, 9
90. वही, 56/29
91. वही, 56/2
92. सोमस्तोत्र सुधा डा0 मुन्षीराम शर्मा,
93. वही, सोम, 63
94. श्रीकृष्णचरितामृतम्, 2/264
95. वही, 2/84
96. वही, 2/85